

परिदृश्य

देश एवं बाजार का गठबंधन अर्थात् शिक्षा में सार्वजनिक-निजी साझेदारी

डॉ. राजीव गुप्ता

लेखक परिचय :

सह प्रोफेसर, समाज शास्त्र विभाग, राजस्थान
विश्वविद्यालय, जयपुर

(रिसर्च अवार्डी - विश्वविद्यालय अनुदान आयोग)

सम्पर्क :

समाज शास्त्र विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर

109, मोहन नगर, गोपालपुरा बाईपास, जयपुर-18

ईमेल : gupta_rajiv123@rediffmail.com

स्वाधीनता मिलने के बाद यह सोचा गया कि भारत को विकास की कल्याणकारी दिशा में ले जाने के लिए कम से कम तीन संस्थागत संरचनाओं को महत्वपूर्ण तरीके से स्थापित किया जाएगा। जिनमें एक शिक्षा है, दूसरा स्वास्थ्य का क्षेत्र है और तीसरा सार्वजनिक वितरण प्रणाली है। इन तीनों संस्थाओं के पनपने से ही किसी भी समाज के जनहित केन्द्रित विकास की दिशा सुनिश्चित होती है और कोई भी राज्य कल्याणकारी राज्य बनता है। स्वाधीनता के पश्चात् शिक्षा के क्षेत्र में अनेक परिवर्तन राज्य ने किए। समवर्ती सूची में शामिल शिक्षा के लिए विभिन्न विद्यालय, जहां से हर वर्ग के बच्चों के लिए शिक्षा मुहैया करवाई जा सकती थी, खोलने के प्रयास किए गए। केन्द्रीय सरकार ने इस उद्देश्य के लिए केन्द्रीय विद्यालय खोले और बाद में नवोदय विद्यालय खोले गए। स्वाधीनता के बाद ऐसा लगता था कि हमारे राजनैतिक नेतृत्व की चेतना में विकास का एक प्रारूप था कि हमारे देश में शिक्षा का विस्तार हो और शिक्षा के साथ धीरे-धीरे गुणवत्ता और प्रतिभा भी आए।

सामाजिक विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए राज्यों ने भी अपने स्तर पर विद्यालय खोले। हर प्रान्त ने अपने प्राथमिक व माध्यमिक विद्यालय, तकनीकी विद्यालय, कॉलेज और विश्वविद्यालय खोले। ऐसा लगने लगा कि प्रान्त पूर्व प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा के विस्तार में रुचि ले रहे हैं। चूंकि प्रान्त संचालित शिक्षा संस्थानों में फीस नाममात्र की हुआ करती थी अतः किसी भी वर्ग का विद्यार्थी इनमें प्रवेश प्राप्त कर सकता था। लिहाजा शिक्षा का हस्तक्षेप मूलक प्रवेश हर वर्ग में हुआ। यह बात अवश्य है कि स्वाधीनता के दौरान जो मध्यम वर्ग उभर कर आया था जिसमें कि उच्च जातियों और मध्य जातियों के लोग ज्यादा थे - स्वाधीनता के बाद शिक्षा के क्षेत्र में दूसरी और तीसरी पीढ़ी आई। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन जाति और अल्पसंख्यकों की मुख्यतः पहली पीढ़ी ने शिक्षा में प्रवेश लिया। यह भेद अवश्य रहा। लेकिन इसके बावजूद समान रूप से शिक्षा के विकास की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई थी। आज का भारत शिक्षा की दृष्टि से विश्व के सबसे बड़े बाजारों में से एक है। एक अनुमान के अनुसार भारत की लगभग आधी जनसंख्या 30 वर्ष तक के आयु समूह का प्रतिनिधित्व करती है। यही कुशल श्रमशक्ति बनकर उभरेगी। लगभग 30 प्रतिशत जनसंख्या असाक्षर है जो अधिकांशतः गांवों में निवास करती है उसे साक्षर कर स्थानीय शिल्प एवं कृषि तथा नगरीय व्यवसायों के लिए कुशल श्रमशक्ति में बदलना जरूरी है। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में नामांकन केवल 8 प्रतिशत के आस-पास है जबकि विकास की 'सस्टेनेबिलिटी' के लिए इस नामांकन को 25 प्रतिशत के निकट लाना आवश्यक है। राज्य सारे वादों के बावजूद कुल जी.डी.पी. का 6 प्रतिशत शिक्षा पर कभी भी खर्च नहीं कर सका। परिणामस्वरूप शिक्षा के विकास के असन्तुलित चरित्र से असमानता व्यापक होती गई। मेरी दृष्टि में असमानता एक प्रकार की हिंसा है जिसे राज्य ने पनपा दिया। प्रवसन की दबावमूलक प्रक्रिया ने हिंसा को हर क्षेत्र का हिस्सा बना दिया। शिक्षा का तर्कयुक्त विस्तार प्रवसन को

एकीकरण के साथ जोड़कर विकास को जनोपयोगी बनाता है जबकि सार्वजनिक-निजी साझेदारी से पनपी शिक्षा केवल विभाजन पनपाती है। यह साझेदारी किसी न किसी रूप में स्वाधीनता के साथ ही उभर आई थी।

यह सही है कि वर्तमान में जिस सार्वजनिक-निजी साझेदारी की बात की जा रही है वह प्रारंभिक दौर में जातीय व धार्मिक समूहों के सहयोग से अस्तित्व में आ गई थी। देश में विभिन्न जातियों, धार्मिक संगठनों के ट्रस्ट और स्वयं सेवी संगठन भी स्थापित हो गए थे। इन संगठनों ने कुछ जगहों पर स्कूल खोल दिए और कुछ ने अपने विद्यालयों की शृंखला भी स्थापित की जो कि किसी एक क्षेत्र में नहीं होकर अनेक क्षेत्रों में थे। यहां से शिक्षा के विकास की यात्रा असमान हो जाती है। मैं इसे असमान इसलिए कह रहा हूं क्योंकि स्कूलों के निर्माण की इस प्रक्रिया ने समावेशी शिक्षा की धारणा को समाप्त कर दिया। इन संगठनों ने जिन विद्यालयों को खोला उन्होंने राज्य के द्वारा स्वीकृत पाठ्यक्रम को तो लागू किया ही साथ-साथ अपने संगठन, धार्मिक श्रेणियों और अपनी जातियों से संबंधित चिन्तन (सेक्टोरियन और पैरोकियल) को भी शामिल किया जो संकीर्ण एवं खण्डीय था।

एक और परिवर्तन हमें देखने को मिलता है। शिक्षा के प्रारंभिक स्तर पर सरकारी विद्यालय-जो चाहे केन्द्रीय सरकार या प्रान्तीय सरकारों ने खोले उनमें सह-शैक्षिक गतिविधियों से सम्बन्धित सुविधाएं निजी संस्थानों द्वारा खोले गए विद्यालयों की तुलना में कम थीं। निजी संस्थाओं द्वारा स्थापित विद्यालयों ने इस फर्क का फायदा उठाया और अपने पाठ्यक्रमों में इन्हें व्यापक रूप में रखा। इन विद्यालयों के लिए जमीन और विभिन्न आर्थिक सुविधाएं सरकार से ली गईं। सरकार की साझेदारी, जिसको आज सार्वजनिक-निजी साझेदारी कहा जा रहा है, वह तो वहां पर भी थी। इन ट्रस्टों, संगठनों के विद्यालय सार्वजनिक व निजी साझेदारी का एक रूप थे। जो स्वाधीनता उपरान्त उभर कर आया। इस विकास ने समावेशी शिक्षा की अवधारणा को तोड़ा। 'मैरिट' की अवधारणा को, जिसकी आज लोग चर्चा करते हैं, को जबरदस्त तरीके से परिवर्तित किया गया। लोगों की मैरिट के बारे में धीरे-धीरे यह चेतना विकसित होने लगी कि केवल अकादमिक और शैक्षिक उपलब्धियां ही महत्वपूर्ण नहीं हैं, महत्वपूर्ण यह भी है कि एक व्यक्ति अन्य क्षेत्रों में कितना सक्रिय है, वह कितना अच्छा खिलाड़ी है या कितना अच्छा वक्ता है, सामान्य ज्ञान का स्तर कितना है, ज्ञान का यह स्तर भारत की सीमा के परे कितना चला जाता है, अर्थशास्त्र, राजनीतिक प्रणाली और संस्कृति की उसकी समझ कैसी है, भाषायी कुशलता कितनी है और कितनी भाषाओं का वह जानकार है ? इस

प्रकार की गतिविधियों को सह-शैक्षिक गतिविधियों के नाम पर इन संगठनों ने अपने पाठ्यक्रम में शामिल किया। इन गतिविधियों को संचालित करने के उद्देश्य से इन शैक्षणिक संस्थानों ने अपने फीस के ढांचे को लगातार बढ़ाना शुरू किया और साथ ही मूलभूत सुविधाओं को भी बढ़ाया। यह पृष्ठभूमि है जो कि 'मैरिट' की अवधारणा को बदलती है।

इन विद्यालयों में शिक्षकों को पर्याप्त वेतन नहीं मिलता। शिक्षक यहां भी सुविधा सम्पन्न नहीं हैं हालांकि इन स्कूलों की फीस बहुत है। यदि प्रान्तीय सरकार के स्कूलों से तुलना करें तो उनमें पहली कक्षा से लेकर 12वीं कक्षा तक फीस के स्तर को देखें तो वह किसी भी स्थिति में 500 सौ रुपये प्रतिवर्ष से ऊपर नहीं जाता। अधिकांश लोगों को तो फीस देनी ही नहीं पड़ती है। विशेष रूप से वे जो कि आरक्षण का हिस्सा हैं। इन स्कूलों में भी अब कम्प्यूटर सुविधाएं आ रही हैं। हालांकि अभी इन स्कूलों में सह-शैक्षिक गतिविधियों के नाम पर पर्याप्त आधारभूत सुविधाएं नहीं हैं। यदि हम केन्द्रीय विद्यालय की फीस को देखें तो वह भी किसी भी स्थिति में, अनुमानित रूप में, 2500-3000 रुपये साल से ज्यादा नहीं है। दूसरी तरफ ट्रस्ट और संगठनों ने जो स्कूल खोले हैं उनकी फीस प्रतिमाह की तो कोई सीमा ही नहीं है। कोई 15000 रुपये प्रतिवर्ष लेता है, कोई 25000 रुपये लेता है तो कोई 50000 रुपये भी लेता है। बीच-बीच में विभिन्न गतिविधियों के नाम पर भी रुपये लेते हैं। प्रारम्भ से ही इन्होंने लाभ कमाने के लिए ये संस्थाएं स्थापित की हैं। यह जरूर है कि पहले उनके लाभ का जरिया और लाभ का दायरा थोड़ा कम था। अब उनके लाभ के दायरे की कोई सीमा नहीं है। इसलिए आज के नव उदारवादी बाजार में शैक्षणिक संस्थाओं के माध्यम से लाभ सबसे अच्छा साधन बन गया है। अर्थात् यदि यहां का शासक वर्ग, पूंजीपति वर्ग और प्रशासक अपने आप को कॉरपोरेट वर्ग के रूप में बदलना चाहता है तो इसके लिए उन्हें शिक्षा पर कब्जा करने और शिक्षा के बाजारीकरण में प्रवेश के अलावा कोई दूसरा उपयुक्त साधन नहीं दिखता। वे न्यूनतम निवेश और अधिकतम आक्रामक प्रचार के साथ इस देश की जनता के हर वर्ग को भ्रमित कर सकते हैं और अपने स्कूल में प्रवेश हेतु आमंत्रित कर सकते हैं।

इसका नतीजा भी सामने आ रहा है, कुछ दिन पहले राजस्थान के एक समाचार पत्र में सरकारी स्कूल में प्रवेश को लेकर एक खबर छपी थी कि प्रवेशोत्सव के बावजूद सरकारी स्कूलों में कहीं तीन विद्यार्थी प्रवेश ले रहे हैं तो कहीं पांच। दूसरी तरफ उन्हीं क्षेत्रों में जहां शिक्षा के नाम पर निजी दुकानें खुली हैं (जयपुर सहित राजस्थान के अन्य दूसरे क्षेत्रों में) में हजारों की संख्या में, यह जानने के बावजूद

की फीस बहुत ज्यादा है उच्च एवं मध्यम वर्ग और यहां तक कि निम्न वर्ग के विद्यार्थी भी जाने की इच्छा रखते हैं। आक्रामक प्रचार के कारण निम्न वर्ग में भी इन स्कूलों में प्रवेश लेने की आकांक्षा पैदा की गई है। ताकि वह भविष्य में लाभ के बाजार में अपने आप को कहीं आर्थिक सुरक्षा के साथ जोड़ सके। शिक्षा का उद्देश्य अब बदल गया है। क्योंकि अब शिक्षा आलोचनात्मक चेतना विकास के लिए नहीं है। अब शिक्षा समाज के सम्पूर्ण विकास के लिए भी नहीं है। अब शिक्षा सामूहिक चेतना को संगठित रूप देने के लिए भी नहीं है। अब शिक्षा का केवल एक उद्देश्य है कि कॉर्पोरेट जगत में अपने आपको कैसे स्थापित किया जाए। भले ही वहां पर व्यक्ति अपने को सस्ते श्रमिक के रूप में स्थापित करे या कुशल श्रमिक के रूप में स्थापित करे। राज्य को भी पता है कि इसके अलावा अब उसके पास कोई विकल्प नहीं है। क्योंकि राज्य ने रोजगार के अवसरों और रोजगार क्षेत्र को कम कर दिया है। 'जॉब लैस' और 'जॉब लॉस' ग्रोथ दोनों राज्य का हिस्सा बने हैं और निजी क्षेत्रों में जो नई तकनीकी जरूरतें हैं उनके लिए अकुशल, अर्धकुशल और कुशल, तीनों तरह के, श्रमिक चाहिए। सरकारी विद्यालय यह दे पाने में सक्षम नहीं हैं। यह केवल और केवल निजी विद्यालय दे सकते हैं। ऐसा एक यथार्थ आक्रामक प्रचार के माध्यम से भारतीय समाज के अन्दर राज्य और कॉर्पोरेट जगत द्वारा मिलकर निर्मित किया जा रहा है।

यहां असमानता का एक पूरा ढांचा बनता है जहां से सार्वजनिक-निजी साझेदारी का तर्क उभरकर आ रहा है। सार्वजनिक-निजी साझेदारी का तर्क कुछ दबावों के चलते ज्यादा महत्वपूर्ण बन जाता है। जब शिक्षा को 14 साल तक के बच्चों के एक मूलभूत अधिकार के रूप में स्वीकार किया गया तब तक राज्य के हौसले पस्त हो चुके थे। ये हौसले 1992 के बाद शुरू हुई वैश्वीकरण, निजीकरण और उदारीकरण की प्रक्रियाओं के चलते पस्त हो रहे थे। राज्य को लगने लगा था कि अब उसका स्थान और महत्व सीमित होता जा रहा है और बाजार वर्चस्वकारी संस्था के रूप स्थापित हो रहा है। वह बाजार जिसको पश्चिमी देश और अपने आपको विकसित कहने वाले समृद्धशाली देश वैधानिकता दे रहे हैं। लोगों को लग रहा था कि आउटसोर्सिंग जैसी प्रणालियों के लिए इन विकासशील देशों का असंतुलित विकास किया जाएगा और यहां की जनता को एक सस्ते श्रम के रूप में आने वाले समय में इस्तेमाल किया जा सकेगा।

आमतौर पर आज जिसे विकास की संज्ञा दी जाती है वह विकास असन्तुलित और असमान किस्म का है। हम केवल और केवल विकसित देशों एवं कॉर्पोरेट जगत के लिए श्रमिक शक्ति को

पैदा करते चले जा रहे हैं। राज्य के पास संसाधनों के अभाव है ऐसा सरकारें व प्रशासनिक शक्तियां दर्शा रही हैं जबकि मुझे लगता है राज्य के पास संसाधनों का अभाव नहीं है। हां, राज्य की प्राथमिकताएं बदल गई हैं। अफसोसजनक स्थिति यह है कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली, स्वास्थ्य और शिक्षा किसी भी देश के अन्दर जनता के 'लिविंग स्टैण्डर्ड' और 'जीवन की गुणवत्ता' स्थापित करती है, पर वह अब राज्य की प्राथमिकता में कहीं भी नहीं है। इस तथ्य के बावजूद कि विभिन्न प्रकार की कर प्रणाली के द्वारा राज्य ने शिक्षा को जन-जन तक पहुंचाने के नाम पर पता नहीं कितने हजारों करोड़ रुपये का राजस्व इकट्ठा किया है। उसको केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकार किस तरह वितरित करते हैं, किन मापदण्डों से शिक्षा को राज्य लोगों तक पहुंचाना चाहते हैं। इसकी कोई व्यवस्थित योजना उनके पास नहीं है। पैसा तो है लेकिन योजना नहीं है। इसलिए कई बार वे घोषणाएं करते हैं कि हम इतनी जगहों पर आई. आई.टी. खोलेंगे, इतनी जगहों पर केन्द्रीय विश्वविद्यालय खोलेंगे, इतनी जगहों पर केन्द्रीय विद्यालय खोलेंगे। ये सारी घोषणाएं विश्वसनीय तो हैं, क्योंकि वे उनकी योजना का हिस्सा भी हैं लेकिन एक तरफ ये खोलने की बात है तो दूसरी तरफ फीस ढांचे को बढ़ाने की बात भी कर रहे हैं। इसके साथ-साथ सार्वजनिक-निजी साझेदारी की अवधारणा के द्वारा आम जनता तक शिक्षा पहुंचाने का मिथक भी विकसित कर रहे हैं।

अब सवाल यह है कि हम सार्वजनिक-निजी साझेदारी को परिभाषित कैसे करें ? यह बहुत ही महत्वपूर्ण सवाल है क्योंकि पहले हमने सार्वजनिक-निजी साझेदारी में उन संगठनों की बात की जिसमें डीएवी संस्थान, विद्या आश्रम के संस्थान, सरस्वती विद्या मंदिर आ गए, उसमें जैन, मुस्लिम, हिन्दू, ईसाई, ब्राह्मणों, अग्रवालियों, राजपूतों आदि के स्कूल यानी हर जाति और धर्म के स्कूल आ गए। मुझे एक भी ऐसा उदाहरण अभी नजर नहीं आता जहां कि राज्य की सहायता लिए बिना कोई स्कूल खोला गया हो। वह चाहे जमीन हो, चाहे टेक्स में छूट हो या सरकार से आर्थिक सहायता लेकर उससे जुड़े रखने की कोशिश हो अथवा आर्थिक सहायता न लेकर भी यह दबाव डालने की कोशिश हो कि आप हमारे क्रियाकलाप में बिल्कुल भी हस्तक्षेप नहीं करेंगे। हम कितनी फीस लेते हैं और हम कितना वेतन शिक्षकों को देते हैं आदि-आदि में हमें स्वतंत्र निर्णय लेने दीजिए।

अभी इनके रूप में थोड़ा बदलाव आया है। उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण की प्रक्रियाओं के तहत तकनीकी क्रान्ति आई है, कम्प्यूटर आधारित गतिविधियां बढ़ी हैं, इंटीग्रेटेड कोर्सेज बढ़ रहे हैं, इंजीनियरिंग और मैडिसिन्स के क्षेत्र में सुपर स्पेशिलीटीज

आ रही हैं। कई प्रकार के ऐसे पाठ्यक्रम हैं जिनसे प्रौद्योगिकीय विकास और विज्ञान के विकास को नई सीमाओं तक पहुंचा पाने में सक्षमता बढ़ी है। इस विकास को 'ज्ञान क्रान्ति' की संज्ञा देते हैं। इस ज्ञान क्रान्ति को आधार बनाकर कहा जा रहा है कि ज्ञान समाज उत्पन्न होना चाहिए। भारत भी एक ज्ञान समाज बनने की दौड़ में लगा हुआ है और यह कहा जा रहा है कि हमारे पास युवाओं की संख्या बहुत है। अतः हम बौद्धिक फोर्स पूरे विश्व को उपलब्ध करवा सकते हैं। हम बार-बार यह भी चर्चा करते हैं कि पश्चिमी देशों के अन्दर भारतीय इंजीनियर्स, भारतीय डॉक्टर्स और प्रबंधन से जुड़े विद्यार्थियों ने नए-नए कीर्तिमान स्थापित किए हैं। हम यह भी स्वीकारते हैं कि यहां से गई हुई वर्क फोर्स ने भले ही वह अर्ध कुशल श्रमशक्ति थी - अनेक देशों के अन्दर वहां की विकास प्रक्रिया में बहुत महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभाई हैं।

औद्योगिक संस्थानों, ज्ञान से जुड़े संस्थानों या अन्य पेशों से जुड़े क्षेत्रों ने ज्ञान समाज को विभाजित कर दिया है। इस विभाजन में यह निर्धारित किया जाने लगा है कि किस क्षेत्र के ज्ञान की किस उद्योग को जरूरत है। स्वाभाविक है कि अगर बाजार में टिकना है तो उस क्षेत्र के अलावा भी व्यक्ति को ज्ञान के विभिन्न पक्षों की उपयुक्त जानकारी होनी चाहिए, साथ ही सह-शैक्षिक गतिविधियों से उत्पन्न बहुस्तरीय समझ एवं संप्रेषण क्षमता इत्यादि की भी जरूरत है। इन उद्योगों ने यह चिन्हित कर लिया है कि हमें किस तरह की शिक्षा चाहिए। अब शिक्षा का बुद्धिमत्ता के साथ कोई संबंध नहीं है। शिक्षा जकड़न को तोड़े इसकी भी जरूरत नहीं है। शिक्षा का संपूर्ण सामाजिक विकास की प्रक्रिया के साथ कोई संबंध नहीं है। अब शिक्षा उतनी ही हो जितनी की एक उद्योग के विकास में इस्तेमाल की जा सके। ये उद्योग अब इस प्रकार की ही शिक्षा देना चाहते हैं। उनका पाठ्यक्रम है चाहे वे उसे बताएं या न बताएं। उनके अपने उद्देश्य हैं वे चाहे उन्हें बताएं या न बताएं। उनके अपने पढ़ाने के तरीके हैं। उनके विद्यालयों में प्रवेश और प्रशासनिक कार्य प्रणाली के अपने तरीके हैं चाहे वे उसे बताएं या न बताएं। एक छुपा हुआ एजेण्डा और एक दृश्य एजेण्डा इन उद्योगों ने राज्य के सामने कम से कम स्पष्ट कर दिया है। राज्य को भी लग रहा है कि अगर वह इस प्रकार की शिक्षा प्रणाली को सार्वजनिक-निजी सहभागिता से विकसित कर पाता है तो जिन वर्गों के उद्देश्यों की वह पूर्ति करने में लगा हुआ है, उनके हितों की पूर्ति हो सकती है और उन्हें वित्तीय लाभ हो सकता है। नौकरशाही और राजनैतिक नेतृत्व के सामने स्थाई लाभ के रास्ते खुल सकते हैं। इन उद्देश्यों को मूर्त रूप देने के लिए सार्वजनिक-निजी साझेदारी के विचार को अमल में लाया जा रहा है।

इस साझेदारी के बारे में कहा जा रहा है कि इसमें राज्य का

प्रभावी हस्तक्षेप है। लेकिन राज्य का इसमें कहीं कोई हस्तक्षेप नहीं है। वे शिक्षक को क्या वेतन देंगे यह उनका मसला है। वे राज्य से सिर्फ आधारभूत सुविधाएं चाहते हैं। आधारभूत सुविधाओं को वे खुद विकसित नहीं करना चाहते क्योंकि इन सुविधाओं के लिए यदि उन्हें बाजार की दर पर व्यय करना पड़ा तो लाभ बहुत कम रह जाएगा। और यदि खुद आधारभूत सुविधाओं को विकसित करेंगे तो सरकार से कहेंगे कि उन्हें रियायती दरों पर जमीन दे दीजिए और निर्माण पर टेक्स में लाभ दे दीजिए। अर्थात् सारी आधारभूत सुविधाएं तो राज्य की प्रत्यक्ष सहायता से करें और राज्य को अपनी गतिविधियों में हस्तक्षेप न करने दें। पाठ्यक्रम कैसे बनेगा, लोगों की भर्ती कैसे होगी, प्रवेश कैसे होंगे, फीस कितनी ली जाएगी आदि में राज्य का हस्तक्षेप इन औद्योगिक घरानों को स्वीकार नहीं है। अधिशेष पूंजी को शिक्षा व्यापार द्वारा एकत्रित करना उनका एक उद्देश्य है।

सार्वजनिक-निजी साझेदारी वस्तुतः इस कॉरपोरेट जगत का शैक्षणिक जगत में उत्पन्न हो रहा वह वर्चस्व है जिसे राज्य स्थापित करना चाहता है। क्योंकि यह नव उदारवादी अर्थशास्त्र और नव उदारवादी संस्कृति को जनता तक पहुंचाने का सबसे बड़ा पैरोकार बनकर उभरा है। ये लोग कहते हैं कि हम भवन बनाकर देंगे आप हमें भूमि उपलब्ध करा दें। यह राजस्थान विश्वविद्यालय में हो रहा है। उनसे पूछा जाए कि राजस्थान विश्वविद्यालय की एक मीटर जमीन की बाजार में क्या कीमत है ? ये सवाल उठते रहे हैं और उन्हें जमीन दे दी गई। उन्होंने भवन बना दिया और उस भवन के बाद प्रबंधन में उनका हिस्सा हो गया। प्रवेश में उनका कुछ हिस्सा हो गया। वे विश्वविद्यालय की समितियों के सदस्य बन जाएंगे। कुछ पाठ्यक्रम, कक्षाएं और सत्र वे अपने आरंभ करेंगे और धीरे-धीरे वहां पर वे अपना एक अर्ध व्यावसायिक किस्म का ढांचा उत्पन्न कर लेंगे। मैंने अर्ध व्यावसायिक इसलिए कहा है क्योंकि थोड़ा बहुत प्रतिरोध जारी है। तुरंत वे भी इसे पूर्ण कालिक पेशा बनाने पर जोर नहीं दे रहे हैं। लेकिन अर्ध व्यावसायिक ढांचा तो सब जगह उत्पन्न हो गया। स्व-वित्त पोषित पाठ्यक्रम क्या है ? यह एक अर्ध व्यावसायिक किस्म का ढांचा है ?

सार्वजनिक-निजी साझेदारी के नाम पर विभाजित शिक्षा का जो स्वरूप विकसित किया है उस स्वरूप से ये अपने हित की कार्य क्षमता विकसित करना चाहते हैं। ऐसा राज्य नहीं कर सकता। राज्य कभी भी सार्वजनिक तौर पर यह नहीं कह सकता कि हम कोई ऐसा संस्थान खोलेंगे जिसमें ऐसे विद्यार्थियों को प्रवेश मिले जो रिलायंस या मित्तल या दूसरे ऐसे संस्थान की सेवा कर सके। अब ऐसी स्थिति में क्या करें ? इसका अच्छा तरीका है कि राज्य रिलायंस या मित्तल या अन्य व्यावसायिक घरानों को अपने पाठ्यक्रम चलाने की अनुमति

दे दे और राज्य उनके साथ में साझेदारी कर ले अथवा अनुबंध कर ले जिसके आधार पर वे अपने उद्देश्यों के अनुरूप शिक्षा प्रणाली या विषयवस्तु को लागू कर सकें। इसके दूसरे खतरे और भी ज्यादा व्यापक होंगे।

सार्वजनिक-निजी साझेदारी के तहत इन संस्थानों द्वारा संचालित पाठ्यक्रमों में जो प्रवेश हो रहे हैं, इनमें प्रवेश देते समय ये कहेंगे कि हम रोजगारोन्मुख पाठ्यक्रम चला रहे हैं और दावे करेंगे कि 100 प्रतिशत रोजगार की सुरक्षा दी जाएगी। जेनपैक्ट जैसे संस्थान, जो सार्वजनिक-निजी साझेदारी के तहत उभर कर आए हैं, वे कहते हैं कि हम 100 प्रतिशत रोजगार सुरक्षा देंगे। 100 प्रतिशत रोजगार सुरक्षा कब तक ? इन संस्थानों में जितने घण्टे काम करवाते हैं उन घण्टों की कोई सीमा नहीं है। अपने हिसाब से प्रशिक्षित करके और 10-15 हजार रुपये मासिक का पारिश्रमिक देकर विद्यार्थियों को नौकरी दी है। जिस दिन इन संस्थानों को लगेगा कि अब उनको और कुशल व प्रशिक्षित विद्यार्थियों की जरूरत है और इनका प्रशिक्षण, उनकी नेटवर्किंग और उनके संबंधों के आधार पर संस्थान के हितों को वर्तमान नौकर पूरा कर चुका है उस दिन उन लोगों को नौकरी से बाहर कर दिया जाएगा। यह एक ऐसा सुविचारित षडयंत्र है जिसके बारे में औद्योगिक घरानों ने सोच लिया है कि जब तक ये कथित प्रशिक्षित लोग, जिनको प्रशिक्षित किया है, अपने अधिकतम ज्ञान, कुशलता और प्रतिभा का लाभ उठाया जा सकता है तब तक वे इनको नौकरी पर रखेंगे। उसके बाद इन्हें नौकरी से बाहर कर दिया जाएगा। चूंकि इन संस्थानों ने अपने हितों के अनुरूप इनको शिक्षा प्रदान की है, लिहाजा दूसरे संस्थान में इनके लिए कोई स्थान नहीं होगा और यदि कोई स्थान होगा तो वह पदोन्नति का स्थान नहीं होगा। वह पदावनति का स्थान होगा। यानी इन विद्यार्थियों के लिए आने वाला भविष्य निहायत ही अवसाद और कुंठापूर्ण हो सकता है और राज्य इसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। क्योंकि राज्य ने तो कह दिया कि हमने ये संस्थान खोल दिए हैं और दूसरी तरफ इन संस्थानों को महत्त्व देने के लिए राज्य अपने संस्थानों को बन्द कर रहा है। विभिन्न सरकारी विद्यालय बन्द होंगे क्योंकि वहां विद्यार्थी प्रवेश नहीं ले रहे हैं या परिणाम अच्छे नहीं हैं आदि तर्क देकर सरकारी विद्यालय बन्द किए जाएंगे। क्या सार्वजनिक-निजी साझेदारी के तहत बन रहे संस्थानों में प्रवेश कम होने पर या परिणाम बेहतर न होने पर सरकार किसी तरह के निर्देश दे सकेगी ?

में व्यापक रूप में यह नहीं जानता कि सार्वजनिक-निजी साझेदारी के तहत किस प्रकार के अनुबंध सरकार और निजी संस्थानों के बीच हो रहे हैं पर मैं एक अनुबंध का उदाहरण दे सकता

हूँ। जयपुर और राजस्थान में अनेक निजी विश्वविद्यालय खुले हैं। उन निजी विश्वविद्यालयों के एक्ट में एक प्रावधान है। इन निजी विश्वविद्यालयों को सैकड़ों एकड़ जमीन कौड़ियों के भाव दी गई है। दूसरे प्रकार के लाभ भी दिए गए हैं। ट्रस्टों के मालिक इन विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति हैं। ब्रांडेड पर्सनलटीज को इन्होंने कुलपति नियुक्त कर लिया है ताकि उनका इस्तेमाल अपने आक्रामक प्रचार के लिए कर सकें। एक्ट के प्रावधान के अनुसार यदि कभी इनका प्रबंधन यह सोचे कि इस विश्वविद्यालय को बन्द करना है तो एक साल के नोटिस पर वह विश्वविद्यालय को बन्द कर सकता है। तब इनकी क्या जिम्मेदारी और जवाबदेही होगी ? इन विश्वविद्यालयों को बन्द करने के बाद इनके पास जो भी स्थाई और अस्थायी संपत्ति होगी वह इन्हीं प्रबंधकों के पास रहेगी। यानी वह जमीन, जो इन्होंने सरकार से ली है और भवन स्थाई रूप से इनके हो जाएंगे। इसका मतलब है कि सरकार ने स्थाई सम्पत्ति इन्हें दे दी। इसी प्रकार की स्थाई संपत्ति और अनेक लाभ इस सार्वजनिक-निजी साझेदारी में कहीं न कहीं विद्यमान होंगे।

समाजशास्त्र के विद्यार्थी के रूप में मेरा यह मानना है कि निजी क्षेत्र में काम करने वाले जितने भी संस्थान हैं उनका एक मात्र उद्देश्य लाभ कमाना होता है। इनसे समाज कल्याण या सामुदायिक कल्याण की सामाजिक जिम्मेदारी की अपेक्षा करना सबसे बड़ा भ्रम है। इन्होंने आजकल 'कॉरपोरेट सोशल रेस्पॉन्सिबिलिटीज' की एक नव्य उदारवादी अवधारणा को विमर्श का केन्द्र बना रखा है। इससे सामाजिक अलगाव का एक स्वरूप उभर कर आया है। जहां समूचा मीडिया व समूचा राज्य बार-बार यह बताने की कोशिश कर रहा है कि ये जो निजी संस्थान और निजी उद्योग उभर के आ रहे हैं, इनके भी अपने सामाजिक उत्तरदायित्व हैं। यह सामाजिक उत्तरदायित्व का सबसे बड़ा मिथक है, जो कभी हो ही नहीं सकता क्योंकि ये संस्थान अपने लाभ के लिए कुछ भी कर गुजर सकते हैं। अर्थात् अपने लाभ के लिए इन्हें किसी प्रकार की हिंसा भी फैलानी पड़े तो ये उस हिंसा को पनपाने में भी नहीं चूकेंगे। ये अपने संचार माध्यमों के द्वारा बार-बार सरकारी विद्यालयों की आलोचना करेंगे और राज्य से करवाएंगे। उन जमीनों और विद्यालयों पर अपना कब्जा कर लेंगे। ये अपने लाभ के लिए कुछ भी कर सकते हैं।

ये निजी संस्थान ऐसा प्रचार करवाते हैं कि इनके विद्यार्थी बहुत ही प्रतिभाशाली हैं या वरीयता सूची में ऊपर आते हैं। मैं इनसे एक सवाल पूछना चाहता हूँ। सार्वजनिक-निजी साझेदारी के रूप में पनपे शैक्षणिक संस्थान हैं और मुझे इन स्कूलों के नाम लेने में भी कोई आपत्ति नहीं होगी-विद्याश्रम, सवाई मानसिंह विद्यालय, एमजीडी और सुबोध पब्लिक स्कूल, रुक्मणी बिड़ला या डी.पी.एस. स्कूल

में-अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, अल्पसंख्यक समूह या गरीबी रेखा के नजदीक अथवा नगरीय निम्न वर्ग के कितने विद्यार्थी पढ़ रहे हैं ? इन विद्यालयों में उपरोक्त श्रेणियों या वर्गों के कितने शिक्षक हैं ? यदि ये संस्थान किसी भी प्रकार के सामाजिक उत्तरदायित्व को पूरा कर रहे हैं तो बताएं कि इन्होंने आर्थिक या सामाजिक रूप से पिछड़े और वंचित वर्ग के सामाजिक सशक्तीकरण के क्या प्रयास किए हैं ? सार्वजनिक-निजी साझेदारी के तहत आने वाले पाठ्यक्रमों में ग्रामीण, निम्न जातीय और आदिवासी परिवेश की कितनी विवेचना होगी ?

मैं यहां यह बात जोर देकर कहना चाहता हूं कि यह नगरीय मध्य वर्ग व उच्च वर्गों के हितों को पूरा करने वाला तंत्र है। मध्य वर्ग की यह आकांक्षा है कि वह उच्च वर्ग तक पहुंचे। आज उसके पास ये सम्भावनाएं आ गई हैं कि यदि वह उन चीजों को प्राप्त कर लेगा तो इन्हें प्राप्त करके वह भी निर्णय प्रक्रिया, लाभ की प्रक्रिया और विकास की प्रक्रिया में अपनी हस्तक्षेपकारी भूमिका निभा सकता है। यानी उसकी कॉरपोरेट वर्ग, नवधनाढ्य वर्ग और शासक वर्ग के बराबर आने की आकांक्षा बढ़ गई है वह मानता है कि जल्दी ही इन वर्गों के बराबर आ जाएगा। यह उसका सबसे बड़ा भ्रम है। उसे यह सोच लेना चाहिए कि उसका कोई भविष्य नहीं है क्योंकि उसका भविष्य तो पहले से ही लिखा जा चुका है। वह शासक वर्ग, कॉरपोरेट वर्ग के सहयोगी के रूप में ही काम कर सकता है। वह न तो खुद कॉरपोरेट वर्ग और न ही शासक वर्ग बन सकता है। कॉरपोरेट वर्ग और शासक वर्ग चूंकि अब अपने लाभ को और अधिक विस्तार देना चाहते हैं, समूचे विश्व के संसाधनों पर अपना नियंत्रण स्थापित करना चाहते हैं इसलिए वे समूचे विश्व के शैक्षणिक, योग्य, कुशल मध्य वर्ग को वैश्विक मध्य वर्ग के रूप में स्थापित करना चाहते हैं। जहां एक तरफ शासक कॉरपोरेट वर्ग उभरकर आया है वहीं उनका एक लक्ष्य वैश्विक मध्य वर्ग भी पैदा करना है जो कि हर जगह पर उनके हितों की पूर्ति के लिए एक सहायक की भूमिका निभाता रहे। सार्वजनिक-निजी साझेदारी हर देश के अन्दर इसी मध्य वर्ग को सहायक के रूप में बनाए रखने की कॉरपोरेट जगत की साजिश का परिणाम है और इसमें राज्य पूरी तरह से अपनी सहयोगी भूमिका निभा रहा है।

अब राज्य के लिए गरीब के कोई मायने नहीं हैं। राज्य ने उच्च व मध्यम वर्ग की शैक्षणिक प्रणालियों को संस्थागत रूप से विकसित करके सामाजिक बिखराव पैदा कर दिया है और यह सामाजिक बिखराव अब जगह-जगह दिखने लगा है। संयुक्त राष्ट्र संघ की एक रिपोर्ट की अभी चर्चा हुई। वह रिपोर्ट कहती है कि आज भी भारत वर्ष के अन्दर 14 वर्ष तक के लगभग 50 प्रतिशत बच्चे ड्रॉप आउट

हो जाते हैं। क्यों होता है वह ड्रॉप आउट ? राज्य से यह पूछा जाए कि क्या बहु-विभेदीकृत शिक्षा व्यवस्था स्थापित करके शिक्षा को मूलभूत अधिकार के रूप में स्थापित किया जा सकता है ? यदि शिक्षा को मूलभूत अधिकार के रूप में स्थापित करना ही है तो समान स्कूल प्रणाली को क्यों नहीं स्थापित करते ? पड़ोसी स्कूल व्यवस्था की बात क्यों नहीं करते ? ऐसा नहीं है कि राज्य यह कर नहीं सकता। राज्य सक्षम है। राज्य के पास पर्याप्त मात्रा में आर्थिक संसाधन हैं जिनका वह निवेश कर सकता है। सुरक्षा कोई बुनियादी सवाल नहीं हो सकता है। क्योंकि बाहरी डर अब उतने नहीं हैं। सुरक्षा के नाम पर जितना खर्च हो रहा है उसका एक हिस्सा यहां लगाया जा सकता है। राजस्थान की सरकार पर्यटन के नाम पर जितना खर्च कर रही है, गुणवत्ता के नाम पर हैरिटेज पर जितना खर्च किया जा रहा है या सुविधा के उपकरण खरीदने के नाम पर जितना पैसा खर्च कर रहे हैं यह व्यर्थ की बर्बादी है। यह कहा जा सकता है कि 'जब रोम जल रहा था तब नीरो बंशी बजा रहा था।' यह बंशी बजाने जैसी ही बात है। निर्धनता बढ़ रही है, बेरोजगारी बढ़ रही है, शिक्षा में ड्रॉप आउट हो रहा है, शिक्षा की विषयवस्तु की तबाही हो रही है, शिक्षकों को वेतन देने के लिए पैसा नहीं है, स्कूल बंद हो रहे हैं, सार्वजनिक वितरण प्रणाली ठीक नहीं है, मंहगाई बढ़ रही है। ये सभी चीजें विकास में अवरोध हैं। सरकार जो विकास कर रही है वह आम जनता के लिए नहीं है। लेकिन आरंभ में आम जनता की अपेक्षा तो सरकार ने ही जगाई थी कि 'बच्चों को पढ़ाओ' ताकि वे विवेकशील नागरिक बनें। सरकार विवेकशील नागरिक तो नहीं बना सकी क्योंकि नागरिकों को लोकतांत्रिक शिक्षा नहीं मिली। सरकार ने कम से कम यह तो कहा था कि वह शिक्षा के माध्यम से रोजगार उपलब्ध करवाएगी। लेकिन सरकार ने तो रोजगार के अवसर भी बंद कर दिए। ऐसे में गरीब तबका क्या करेगा ? उसके लिए तो शिक्षा सपना बनकर रह जाएगी। क्योंकि मध्य वर्ग और उच्च वर्ग ने निजी स्कूलों को सभी के सामने सम्मानजनक संस्थाओं के रूप में सबके सामने स्थापित कर दिया है। अब गरीब तबके में भी मीडिया के संपर्क में होने की वजह से आकांक्षाएं तो हैं। ऐसे में वह क्या करेगा ? ऐसे में वह सिर्फ यही करेगा कि अपनी बुनियादी जरूरतों में कटौती करके किसी एक बच्चे को, संभव है पितृसत्तात्मक समाज होने की वजह से लड़के को, निजी स्कूल में भेजे। नतीजन उस बच्चे को पढ़ाने तक खुद गरीबी का शिकार रहे और अन्य बच्चे भी शिक्षा के अंदर पिछड़ते चले जाएं। यानी परिवार के अन्दर एक पीढ़ी को वंचना व भेदभाव का सामना करना पड़ेगा। अन्य बच्चों को, खासकर लड़की को, आप ऐसे स्कूलों में भेजें जिनका कोई सम्मान नहीं है। यह महिला शिक्षा पर प्रहार भी होगा।

एक तथ्य यह भी है कि निजी शिक्षा संस्थानों में योग्य शिक्षक नहीं हैं। दूसरी तरफ सरकारी स्कूलों में योग्य शिक्षक हैं। यह विरोधाभासी स्थिति है। जहां योग्य व्यक्ति हैं वहां आप कह रहे हैं कि मैरिट विकसित नहीं हो रही और जहां योग्य शिक्षक नहीं हैं वहां कहा जा रहा है कि मैरिट और गुणवत्ता के नए अध्याय लिखे जा रहे हैं। ये विरोधाभासी स्थिति क्यों पैदा हो रही है ? सार्वजनिक-निजी साझेदारी के अन्तर्गत यह सवाल कहीं अन्दर तक हमें भेदता है और इसका उत्तर भी हमारे सामने है। सरकारी विद्यालयों के अन्दर शिक्षक को एक कर्मचारी बना दिया है, जबकि शिक्षक कभी भी कर्मचारी नहीं हो सकता क्योंकि शिक्षा का कोई प्रशासनिक स्पेस नहीं होता। शिक्षा में लगातार जूझना होता है, समाज में सूचनाओं और ज्ञान के विश्व के साथ, लगातार जूझना होता है सामाजिक मुद्दों के साथ टकराहट होती है और बच्चों को ज्ञान की सीख देते हैं। प्रशासन में इस तरह की कोई गतिविधि नहीं होती, कर्मचारी इस तरह की कोई गतिविधि नहीं करता क्योंकि वह तो एक निश्चित ढांचे में काम करता है। उसका अपना महत्त्व है और शिक्षक के काम का अपना महत्त्व है। शिक्षक को यदि कर्मचारी बना देंगे और यदि कर्मचारी को शिक्षक बना देंगे तो दोनों ही प्रणालियां खत्म हो जाएंगी। मान लीजिए राज्य के द्वारा बनाए गए नियम और कार्यप्रणालियों से कर्मचारी की अपनी असहमति है तो वह क्या करे ? क्या वह नियमों और कार्यप्रणालियों को तोड़कर अपना कोई विकल्प दे सकता है ? कर्मचारी ऐसा नहीं कर सकता। दूसरी तरफ यदि किसी शिक्षक को ज्ञान, सूचना और कानून के किसी भी प्रकार की विसंगति नजर आ रही है तो वह अपने तर्क के माध्यम से विकल्प देने की बात कर सकता है। हमारे यहां शिक्षक को सरकारी विद्यालयों और महाविद्यालयों के अन्दर कर्मचारी बनाया गया। दूसरी ओर निजी संस्थानों के अन्दर शिक्षक निजी संस्थानों के प्रबंधन के सत्तावादी नियंत्रण के शिकार तो हैं लेकिन इस सब के बावजूद वे कर्मचारी नहीं हैं। वे सिर्फ शैक्षणिक कार्य करते हैं, वे सह-शैक्षिक गतिविधियों में लगे रहते हैं। सत्तावादी नियंत्रण है तो स्कूल में 10 से 5 बजे तक वहां बैठे रहते हैं लेकिन इस समय में उनके काम सिर्फ और सिर्फ विद्यार्थियों के हित के साथ जुड़ते हैं। स्वभाविक तौर पर इन विद्यालय के शिक्षकों में कार्य के प्रति जुड़ाव ज्यादा है। लेकिन सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों को जुड़ाव नहीं है क्योंकि उनको अन्य कार्यों में लगा दिया गया है। निजी विद्यालयों के शिक्षकों को कोई अन्य काम नहीं करना होता। न तो उन्हें किसी जनगणना में जाना होता है और न ही पोलियो की दवा पिलाने और न ही चुनाव कराने। जब शिक्षक पर इस तरह के दबाव पड़ते हैं तो उसमें अरुचि पैदा हो जाती है। ये सभी गैर-शैक्षणिक कार्य हैं जिसकी वजह से धीरे-धीरे सरकारी विद्यालय अपनी गुणवत्ता खो रहे हैं। एक सरकारी

शिक्षक को ये आदेश मिलते हैं तो उसे कर्मचारी के रूप में ये काम करने भी पड़ते हैं लेकिन इनका परिणाम यह होता है कि उसका ज्ञान, शिक्षा एवं चिन्तन प्रक्रिया के प्रति लगाव धीरे-धीरे खत्म होता चला जाता है और उसका खामियाजा विद्यार्थियों को भुगतना पड़ता है। सरकारी विद्यालयों को सुविचारित रूप से गैर-लोकतांत्रिक संस्था बनाकर खत्म कर दिया। अब निजी और सार्वजनिक सहभागिता ने एक नया कार्यक्रम प्रस्तावित किया है। यह बड़ी-बड़ी सड़कें और फ्लाई ओवर निजी क्षेत्र से बनवाने के बाद कह देते हैं कि आपने बना दिया, इसको विकसित कर दिया। अब आप इसको ऑपरेट करेंगे। और 15-20-25 साल तक वहां टेक्स वसूलेंगे। टेक्स वसूलने से न केवल लागत निकाली जाएगी बल्कि कई गुना मुनाफा भी कमाया जाएगा। इसे बीओटी कहा जाता है। शिक्षा में सार्वजनिक-निजी साझेदारी इसी तरह की बीओटी तो नहीं है कि सभी साधन जनता से लेने के बाद उसी से फायदा भी कमाएं ? इस फायदे में से 10 या 20 प्रतिशत राशि सरकार को दे दें ताकि यह कहा जा सके कि सरकार इसकी साझेदारी में शामिल थी।

ऐसा आधारभूत सुविधाओं के क्षेत्र में भी किया जा रहा है तो यह एक बड़ी गलती कर रहे हैं। क्योंकि फिर वह सड़क आम जनता के लिए नहीं रह जाएगी। आज जयपुर से दिल्ली जाने के रास्ते को देख लीजिए। किसी तात्कालिक जरूरत की वजह से यदि आपको निजी वाहन से दिल्ली जाना पड़े तो इस सड़क पर चलने का इतना टेक्स देना पड़ता है जितने में कि एक व्यक्ति आसानी से बस से दिल्ली तक की यात्रा तय कर सकता है। क्या हम शिक्षा के क्षेत्र में भी ऐसा ही करना चाहते हैं ?

शिक्षा आज लोगों की बुनियादी जरूरत है-एक अच्छा नागरिक बनने के लिए, एक अच्छा रोजगार पाने के लिए, एक अच्छा शिक्षक बनने के लिए या एक अच्छा निवेशक बनने के लिए; सभी चीजों के लिए कहीं न कहीं शिक्षा की जरूरत है। शिक्षा की आवश्यकता को पूरा करने के लिए 'बस' के रूप में सरकारी विद्यालय हैं उसे सरकारें आम जनता से छीन रही हैं और उसे सार्वजनिक-निजी साझेदारी के संस्थानों में जाने के लिए बाध्य कर रही हैं। सबसे खतरनाक बात यह है कि मैं जो पढ़ना चाहूँ वह न पढ़कर उसे पढ़ूँ जो मुझे पढ़ाया जा रहा है। यानी सार्वजनिक-निजी साझेदारी सृजनात्मकता एवं रुचि को विद्यार्थी से दूर कर रही है। इसमें शिक्षा केवल पुनर् उत्पादन की क्रिया भर रह जाएगी। इसमें विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, मानविकी और भाषा जैसे विषयों का कोई महत्त्व नहीं है। संप्रेषण की कुशलता के लिए भाषा का महत्त्व है। अर्थात् ये विषय जो समग्र व्यक्तित्व पैदा करते थे और संतुलन एवं नवाचार को मूल्य के रूप में स्थापित करते हैं, आज शिक्षा में उपेक्षित हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में एक खतरा यह भी है कि तकनीक का तीव्र विकास हो रहा है पर उसकी एवज में विज्ञान पीछे छूटता जा रहा है। यदि विज्ञान पीछे छूटता है तो यह समूची शिक्षा प्रणाली के लिए बहुत बड़ा खतरा हो सकता है। क्योंकि तकनीक का विकास एक स्थान तक पहुंचकर अगर वैज्ञानिक अनुसंधान नहीं है तो मंद हो जाता है और यदि विकास की गति मंद होती है तो लम्बे समय तक उसकी यथास्थिति में बने रहने की संभावना ज्यादा है। इसे कोई भी समाज स्वीकार नहीं करेगा। सार्वजनिक-निजी साझेदारी की जो चर्चा स्कूलों के संदर्भ में हो रही है और उसे मैंने अभी महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के संदर्भ में प्रस्तुत किया है। वहां पर विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, मानविकी और भाषा के कौनसे पाठ्यक्रम हैं ? वहां तो बायोटेक्नोलॉजी, माइक्रोबायोलॉजी, इंजीनियरिंग, कम्प्यूटर साइंस, फैशन डिजाइनिंग आदि के पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं। ये बहुत आकर्षक नाम हैं और इन आकर्षक नामों के साथ आक्रामक प्रचार की रणनीति है। अखबार के पूरे एक पेज में इनका विज्ञापन होता है जिसमें सुविधाओं, हरे-भरे कैम्पस और बहुत ही योग्य फैक्लटी के बारे में लिखा होता है, जो कि इनके पास कभी भी नहीं होती। सूचना कैम्पेन के रूप में चलाए जाने वाले ये विज्ञापन बहुत ही सुनियोजित तरीके से भ्रामक सूचनाओं के कैम्पेन होते हैं। इन विज्ञापनों के माध्यम से आकांक्षी परिवारों के बच्चे वहां पहुंचते हैं। उनसे ज्यादा से ज्यादा फीस वसूल की जाती है। रोजगार की उपलब्धता का वादा करते हैं। रोजगार की यह उपलब्धता पांच-सात महीने ही चल पाती है। उसके बाद उस नौकरी से या तो उन्हें निकाल दिया जाता है या वे स्वयं ही कुंठित होकर नौकरी छोड़ देते हैं।

शिक्षा में सार्वजनिक-निजी साझेदारी के नाम पर एक ऐसी श्रमशक्ति विकसित करने की कोशिश की जा रही है जो निश्चित समय तक पूंजीपतियों को सुविधाएं प्रदान कर सके और स्व रोजगार के जाल में फंस सके। जब इनको निकालेंगे तो वे नहीं कहेंगे कि उन्हें निकाल रहे हैं। उनसे कहा जाएगा कि अभी आप जाएं, हमें जरूरत होगी तो आपको बुला लेंगे या घर पर करने का एक प्रोजेक्ट देकर कहेंगे कि इसे पूरा कर लीजिएगा ताकि व्यक्ति को भी लगे कि उसे कुछ मिल रहा है। ये संस्थान अपने यहां पर नियुक्ति सम्बन्धी प्रावधानों और सुरक्षा संबंधी प्रावधानों से पूरी तरह मुक्त हो जाएंगे। यह सार्वजनिक-निजी साझेदारी 'फ्लैक्सी लेबर' को आगे बढ़ा रही है। संगठित श्रमिक इसमें नहीं आएंगे। फ्लैक्सी लेबर आज के दौर में नव उदारवादी आर्थिक व्यवस्था की जरूरत है। इस शोषण व असमानता का राज्य को विरोध करना चाहिए था पर वह भी इसी फ्लैक्सी लेबर को विकसित करने में सार्वजनिक-निजी साझेदारी के नाम पर अपनी अहम भूमिका निभा रहा है। इसलिए कल्याणकारी राज्य तो अब है ही नहीं। मुझे ऐसा लगता कि राज्य सार्वजनिक-निजी

साझेदारी के माध्यम से यह स्थापित करना चाहता है कि उसका भी अपना एक निजी चरित्र है। यदि राज्य का निजी चरित्र होगा तो यह आश्चर्य की बात नहीं कि राज्य भी आने वाले समय में सार्वजनिक-निजी साझेदारी से चलने वाली समिति बन जाए, अभी के हालात को देखें तो एक हद तक यह चल भी रहा है।

ब्रेटनबुड इंस्टीट्यूशन और कॉरपोरेट वर्ल्ड प्राईवेट हैं, स्टेट पब्लिक है तो सार्वजनिक-निजी साझेदारी तो वहां पर भी है। लेकिन जब यह सार्वजनिक-निजी साझेदारी राज्य के प्रभावी हस्तक्षेप के माध्यम से होगी तो विदेश नीति में भी आएगी। आंतरिक सुरक्षा की नीतियों में भी आएगी। सब जगह पर यह साझेदारी विकसित होगी। कोई आश्चर्य नहीं होगा जब आने वाली पीढ़ियां देखेंगी कि किसी की निजी सेनाएं होंगी, किसी की निजी विदेश नीति होगी, किसी की निजी घरेलू सुरक्षा की नीति होगी। क्योंकि शिक्षा का तो निजीकरण हो ही रहा है इसलिए शिक्षा का निजीकरण आने वाले समय में सभी व्यवस्थाओं में निजीकरण को ही विकसित करेगा। निजीकरण के पैरोकार फिर शायद यह बड़े गर्व से कहें कि 'अब हमारा समाज पूर्णतः राज्यविहीन समाज हो गया है।' ये राज्यविहीन समाज मार्क्सवादी प्रतिमानों के अनुरूप नहीं है। ये राज्यविहीन समाज नव उदारवादी अर्थशास्त्र के प्रतिमानों पर आधारित होगा। जहां राज्य का स्थान बाजार ले लेगा और जीवन के सभी पक्षों को बाजार ही संचालित करेगा। बाजार ने इन्हें संचालित करना आरंभ भी कर दिया है। शिक्षा में एक सम्भावना बनती थी। 1990 के दौर में मैंडल ने एक किताब लिखी थी 'लेट कैपिटलिज्म' जिसमें लिखा था कि शिक्षा बुर्जुआ समाज द्वारा इस तरह विकसित होती है कि आज्ञाकारिता, बौद्धिकता, व्यक्तिगत उपलब्धियों को बहुत ही महत्त्वपूर्ण मूल्य के रूप में स्थापित किया जाता है। मेरी दृष्टि में यह शिक्षा कभी भी 'डीकोलॉनाइजेशन ऑफ द माइण्ड' की सम्भावना उत्पन्न नहीं करती। पर इसके साथ-साथ शिक्षा से सदैव यह अपेक्षा की जाती है कि उसका स्वरूप ऐसा हो जो इन सब व्यवस्था मूलक प्रारूपों का विकल्प भी पैदा कर सके ताकि वह विकल्प बार-बार इनको चुनौती देता रहे। मैं यह नहीं कह रहा कि वे विकल्प स्थापित होंगे लेकिन विकल्प के द्वारा दी जाने वाली चुनौती इस तरह के व्यवस्थामूलक प्रारूपों को कई बार खतरों में डालती है। विकल्प से उत्पन्न यह चुनौती आम जन को अनेक लाभ पहुंचा देती है। अतः आमजन को लाभ पहुंचाने के लिए शिक्षा के अन्दर इस प्रकार के विकल्प उत्पन्न हों यह बहुत जरूरी है। सार्वजनिक-निजी साझेदारी ऐसे किसी भी विकल्प को उत्पन्न करने से रोकती है और इसलिए मुझे लगता है कि किसी भी विकासशील देश में, विशेष रूप से भारत जैसे देश में, सार्वजनिक-निजी साझेदारी पर आधारित शिक्षा प्रणाली समग्र विकास के सम्मुख सबसे बड़ा खतरा है।

हमने आर्थिक क्षेत्र के खतरों व व्यक्तित्व के विखंडन के खतरों पर बात की है। संभवतः एक खतरा यह भी हो सकता है कि प्रान्तीय सरकारें जिस सार्वजनिक-निजी साझेदारी को कर रही हैं उसमें ऐसे संगठन भी हों जो धर्मान्धता, जातिवाद, भाषाई दुराग्रह एवं क्षेत्रवाद फैलाते हैं। संभव है कि सार्वजनिक-निजी साझेदारी के रूप में उभरा हुआ कोई स्कूल राजस्थान के अन्दर जय-जय राजस्थान के नारे लगाए, महाराष्ट्र में जय महाराष्ट्र के नारे लगाए, हिन्दी भाषी क्षेत्रों में वह ऐसे नारे लगाए कि जो दक्षिणवासी हैं वे बाहर जाएं या दक्षिण में नारे लगाए कि हिन्दी भाषी बाहर जाएं। इस तरह से शिक्षा के क्षेत्र में सार्वजनिक-निजी साझेदारी के तहत पनपने वाले विद्यालय भारत को विभाजित करने में योगदान करें। यह भी हो सकता है कि (क्योंकि जब सत्ता पतनोन्मुखी होती है तो उसकी गिरावट की कोई सीमा नहीं होती) कल कोई आतंकवादी संगठन सार्वजनिक-निजी साझेदारी के नाम पर अपने प्रशिक्षण स्कूल खोले। राज्य सामने तो यह कहे कि ये प्रशिक्षण स्कूल इसलिए खोले जा रहे हैं क्योंकि हमारी सेना अक्षम होती जा रही है, छोटे वेतन आयोग के बाद सेना से बहुत से लोग छोड़कर जा रहे हैं, इसलिए हम ऐसी सेना विकसित करना चाहते हैं जो कम से कम आंतरिक और बाहरी सुरक्षा के समय हमारे काम आ सके। और जब तक वह सत्ता के काम में न आए तब तक ये लोग आतंकवाद फैलाने में उसका इस्तेमाल करते रहें। तो क्या राज्य इस प्रकार की शिक्षा को वैधानिकता देगा ? ये वे परिणाम व सम्भावनाएं हैं जो मिथकीय नहीं हैं। ये सम्भावनाएं वास्तविक हैं। वास्तविक सम्भावनाएं मैं इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि मैं इस बात को पूरे तर्क और दावे के साथ कह सकता हूँ कि भारतवर्ष के अन्दर पनपी हुई साम्प्रदायिकता में सरस्वती विद्यामंदिर और इस तरह के हिन्दूवादी संगठनों के स्कूलों की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका रही है, जो विभिन्न प्रान्तों के अन्दर सार्वजनिक-निजी साझेदारी के नाम पर पैदा हुए हैं। इन संगठनों द्वारा दिए जा रहे प्रशिक्षण आत्म रक्षा एवं राष्ट्र के नाम पर हथियार चलाने से जुड़े हैं।

आज के बहुत से निजी विद्यालयों के विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अभाव सार्वजनिक-निजी साझेदारी के अन्तर्गत पनपे स्कूलों में व्याप्त रूढ़िवादी शिक्षा का नतीजा है। हम आज तक अपनी जातीय अस्मिताओं को नहीं भुला सके हैं। मुझे पता है कि वह जातीय अस्मिता मुझे अनेक अवसरों पर मेरी जाति के शैक्षणिक संस्थान याद दिलाने का प्रयास करते हैं। सार्वजनिक-निजी साझेदारी के नाम पर जयपुर में अनेक जातीय विद्यालय व कॉलेज चल रहे हैं। जिस दिन इन संकुचित अस्मिताओं की मांग बाजार में फायदे के लिए होने लगेगी तब ये विद्यालय अपने रूप और चरित्र को बदलने में नहीं चूकेंगे। सार्वजनिक-निजी साझेदारी से पनपने वाले स्कूलों को मैं समाज को विभाजित करने के लिए उत्पन्न किए जाने वाले

उन संस्थागत ढांचों की संज्ञा देता हूँ जिन्हें निर्मित और विकसित करने में उस राज्य और सरकार की भूमिका है जिसने हम नागरिकों के माध्यम से संविधान के सम्मुख यह शपथ ली है कि हम इस देश को एक धर्मनिरपेक्ष, समाजवादी, लोकतांत्रिक गणतंत्र के रूप में स्थापित करने के लिए प्रतिबद्ध हैं। संविधान का इतना बड़ा मजाक और उल्लंघन एवं संविधान के इतर जाकर संवैधानिक प्रतिमानों के विपरीत संस्थागत ढांचों को निर्मित करने की राज्य की साजिश है। सार्वजनिक-निजी साझेदारी के तहत शिक्षा इसका एक माध्यम है, यह अब साफ-साफ दिख रहा है। जनता की एक जुटता को तोड़ने के लिए इस साझेदारी का बड़ी आसानी से प्रयोग होता है और समाज खण्डित व्यवस्था का रूप ले लेता है।

राज्य अपने संसाधनों का तर्क संगत वितरण नहीं कर रहा है क्योंकि राज्य संसाधनों का व्यय दूसरी जगह कर रहा है। राज्य अपने संसाधनों को वहां लगा रहा है जहां से उपभोक्ता समाज निर्मित होता है। राज्य संसाधनों को शिक्षा और स्वास्थ्य पर नहीं लगा रहा। यदि स्वास्थ्य के क्षेत्र में बात करें तो जयपुर के अन्दर निजी क्षेत्रों के कितने बड़े-बड़े अस्पताल खुल रहे हैं। उन संस्थानों को सरकार ने जमीन किस कीमत पर दी ? यदि इन जमीनों को बाजार की दर पर बेचा होता तो कितना पैसा आता और उस पैसे को शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र को विकसित करने पर लगाया जा सकता था। यदि इस राशि को शिक्षा, स्वास्थ्य और सार्वजनिक वितरण प्रणाली को विकसित करने पर लगाते तो शायद जनता का कल्याण हो सकता था। मुझे समझ में नहीं आता कि पिक्कॉक गार्डन बनाने या तमाम तिराहों-चौराहों पर करोड़ों की मूर्तियां लगाने की क्या जरूरत थी ? धार्मिक उत्सवों के नाम पर करोड़ों रुपये खर्च किए गए हैं। सरकारी या राजनैतिक पार्टियों की बैठकें पांच-सात सितारा होटलों से नीचे नहीं होतीं। यदि पांच या सात सितारा होटल बनाना सरकार की जरूरत है तो उनसे होने वाले लाभ का कितना प्रतिशत धन शिक्षा या स्वास्थ्य पर लगाया जाता है ? ये पैसा उपभोक्तावादी समाज विकसित करने पर लगाया जा रहा है। सरकारी शिक्षण संस्थान इसलिए घाटे में हैं क्योंकि वहां या तो फीस नहीं लगती और यदि लगती है तो बहुत ही कम है। इसलिए वहां से किसी प्रकार से राजस्व इकट्ठा करने के स्रोत नहीं हैं बल्कि वहां तो 'सब्सिडी' प्रदान की जाती है। क्योंकि राज्य की भूमिका कल्याणकारी है इसलिए अन्य क्षेत्रों से कमाए हुए पैसे को यहां लगाया जाता है।

यदि राज्य यह कहे कि केन्द्रीय विद्यालय, केन्द्रीय विश्वविद्यालय एवं अन्य शैक्षणिक संस्थान मुनाफा कमाने वाले संगठन होने चाहिए तो यह अटपटी बात लगेगी। राज्य फीस के ढांचे को तर्क संगत बना सकता है और थोड़ी बहुत फीस बढ़ाने की संभावना दिखती है तो वह बढ़ाई भी जा सकती है। यदि उपलब्धि के अनुसार देखें तो

सीबीएसई परीक्षा में किन स्कूलों का परिणाम सबसे अच्छा रहता है ? परिणाम के हिसाब से भी केन्द्रीय विद्यालयों से निजी विद्यालय अभी भी पीछे हैं। लेकिन क्या वजह है कि केन्द्रीय विद्यालय का वही बच्चा 'नेशनल टैलेन्ट सर्च' की परीक्षा में पिछड़ जाता है और निजी विद्यालय का बच्चा बाजी मार ले जाता है ? क्योंकि निजी स्कूलों में सह-शैक्षणिक गतिविध करवाई जाती हैं, पाठ्यक्रम के बाहर की चीजें भी पढ़ाई जाती हैं। सरकारी विद्यालयों में शिक्षा से इतर पढ़ाए जाने के लिए शिक्षक के पास समय ही नहीं है क्योंकि उसको दूसरी गतिविधियों में लगा देते हैं। उसके ऊपर परीक्षा परिणाम अच्छा होने की तलवार लटकी रहती है, उसके ऊपर तबादले की तलवार लटकी रहती है। निजी विद्यालयों के शिक्षकों पर तबादले की तलवार नहीं होती, निजी विद्यालय व महाविद्यालय के शिक्षकों को भी कर्मचारी जैसा बना दीजिए और इनको भी राष्ट्रीय कार्यक्रमों में लगा दीजिए फिर इनके परिणाम देखिए। इन निजी क्षेत्र के संस्थानों के सत्तावादी नियंत्रण को तो परिणाम चाहिए। ये परिणाम आधारित संस्थान हैं। जबकि सरकारी क्षेत्र में परिणाम भी चाहिए और शिक्षक को वे अन्य कार्यों से मुक्त भी नहीं करना चाहते।

जिन सरकारी विद्यालयों के परिणामों का प्रदर्शन इतना अच्छा है उन्होंने कभी प्रचार नहीं किया है। क्या किसी ने उनके बड़े-बड़े विज्ञापन देखे हैं ? इन शैक्षणिक या स्वास्थ्य संस्थानों की गुणवत्ता के लिए क्या कभी विज्ञापन दिए हैं ? क्या देश के सबसे प्रतिष्ठित स्वास्थ्य संस्थान 'ऑल इण्डिया इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइन्सेज' का विज्ञापन आया है ? क्या चंडीगढ़ के पीजीआई या आईआईएम या आईआईटी संस्थान, जो कि सरकार द्वारा ही संचालित हैं, की कोई बराबरी कर सका है ? यदि इन क्षेत्रों में जाने वाले विद्यार्थियों से पूछा जाए कि कौनसा संस्थान चुनना चाहोगे तो वे इन सरकारी संस्थानों को ही सबसे पहले चुनेंगे। क्योंकि इन सरकारी संस्थानों में आज भी गुणवत्ता है। केन्द्रीय विद्यालयों में आज भी गुणवत्ता है।

सवाल ये है कि इन सरकारी संस्थानों का नुकसान सबसे ज्यादा क्यों हो रहा है ? क्योंकि राज्य सरकारों ने स्वास्थ्य और शिक्षा की आपराधिक किस्म की उपेक्षा की है। इन सरकारों ने अपने यहां के सरकारी शिक्षा संस्थानों और स्वास्थ्य संस्थानों को विकसित ही नहीं होने दिया। यही वजह है कि ये संस्थान धीरे-धीरे जनता के बीच से भी अपनी इज्जत खो रहे हैं। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् ने राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा : 2005 बनाई। यह पाठ्यचर्या स्टूडेंट फ्रेंडली है। यह एक नई शैक्षणिक प्रणाली की तरफ संकेत देती है। उस नई शैक्षणिक प्रणाली को मूर्त रूप देने के उद्देश्य से पुस्तकें लिख गई हैं। ये पुस्तकें स्कूलों में पहुंच गईं। इसके अलावा राज्य सरकारें क्या करती हैं ? यदि

स्कूलों में जाकर देखें तो वही पुरातन ढंग से पढ़ाने के तरीके और कक्षा व्यवस्थाएं हैं। इन सब के साथ सरकारी विद्यालय अपने आपको चलाने की कोशिश कर रहे हैं। यह समाज व्यवस्था और सांस्कृतिक विसंगतियों की पराकाष्ठा हो गई है। एक तरफ राज्य नव उदारवादी व्यवस्था की तरफ भाग रहे हैं और दूसरी तरफ सरकारी शिक्षा को उपयुक्त रूप से लागू करने की असमर्थता दर्शाता है। लड़कियों के लिए ड्रेस कोड होना चाहिए, इस तरह की सांस्कृतिक रूप से विरोधाभासी स्थितियां पैदा हो रही हैं। ये विरोधाभासी स्थितियां इसलिए उत्पन्न हो रही हैं क्योंकि शैक्षणिक विकास को समाज के समग्र विकास के मॉडल से जोड़ने की कभी कोशिश ही नहीं की गई। राज्य की यह सबसे बड़ी असफलता है। प्रान्तीय सरकारें इसमें और भी ज्यादा असफल रही हैं।

हमारे लिए अफसोस जनक स्थिति है कि शिक्षा समवर्ती सूची में शामिल है। समवर्ती सूची में शामिल विषयों की केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारों दोनों की संयुक्त जिम्मेदारी होती है। मैंने अफसोस जनक स्थिति इसलिए कहा क्योंकि केन्द्रीय सरकार व राज्य सरकारें संयुक्त एवं स्वायत्त दायित्व का अर्थ भूल गईं जो कि समवर्ती सूची का दर्शन है। केन्द्रीय सरकार के पास राजस्व पर्याप्त होता है इसलिए उसने एक हद तक अपनी जिम्मेदारी को बड़ी सीमा तक निभाया भी है। इसीलिए केन्द्रीय विश्वविद्यालय आज प्रतिभा के केन्द्र हैं। फिर चाहे एम्स हो या बैंगलूर का इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइन्स हो, इनका मुकाबला कौन कर पाया है। जहां केन्द्रीय सरकार ने राजस्व को सही तरह से निवेश किया है वे संस्थान आज भी इस देश के जाने माने संस्थान हैं। क्योंकि उनको अपने क्षेत्र में काम करने की स्वायत्ता दी है और सरकार का कम से कम हस्तक्षेप इन संस्थानों में होता है। इसीलिए वे अपनी शैक्षणिक विकास की प्रक्रिया को जारी रख पाए हैं। और उन्होंने वह सब कुछ कर दिखाया जो कि एक कल्याणकारी राज्य के अन्दर किया जा सकता है। इन प्रतिष्ठित शैक्षणिक संस्थानों ने, सार्वजनिक क्षेत्र की ऐसी बहुत-सी संस्थाओं जिन्हें नवरत्न कहा जाता है, को लाभ दिया है। क्या इस देश के अन्दर ऐसी कोई बैंक है जो स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया को मात दे सका हो। लाइफ इंश्योरेंस कॉरपोरेशन ऑफ इण्डिया ने जिस सुरक्षा या आत्मविश्वास को पैदा किया है क्या उसे निजी क्षेत्र का कोई संस्थान दे पाया है ?

इस परिदृश्य में सार्वजनिक क्षेत्र में हुए सभी विकासों को देखने की जरूरत है। ऐसा नहीं है कि सार्वजनिक क्षेत्र के संस्थान विकसित नहीं हो सकते। इन्हें विकसित करने के लिए राज्य के पास राजनैतिक संकल्प शक्ति होनी चाहिए। और यह राजनैतिक संकल्प शक्ति कम से कम शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में राज्य सरकारों में नजर नहीं आती। चूंकि राज्य सरकारों के संदर्भ में यह संकल्प

शक्ति नजर नहीं आती इसलिए शैक्षणिक संस्थानों के स्तर का पतन हो रहा है।

सार्वजनिक व्यवस्थाओं के निजीकरण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर दबाव पड़ रहे हैं। यहां के जो शासक वर्ग, भू-माफिया वर्ग, औद्योगिक माफिया और शिक्षा माफिया वर्ग को यह समझ में आ चुका है कि शिक्षा आने वाले समय में उनके लिए लाभ का सबसे बड़ा क्षेत्र साबित हो सकता है। अतः वे सभी मिलकर राज्य सरकारों और केन्द्र सरकार पर दबाव डाल रहे हैं। इसीलिए सार्वजनिक-निजी साझेदारी जैसे नामों से वे इन क्षेत्रों में प्रवेश करने की अनुमति चाह रहे हैं और राज्य उनको अनुमति दिए चला जा रहा है। क्योंकि शायद अब हम यह मानने लगे हैं कि नव उदारवादी अर्थव्यवस्था का कोई विकल्प नहीं है। इसे सिद्ध करने के लिए शिक्षा में भी इस विकल्प हीनता को बनाना जरूरी है।

सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के गठजोड़ ने ऐसे विषयों के अध्ययन में प्रवेश किया है जो समूचे 'ज्ञान-परिवेश' के लिए खतरा बन सकता है। ज्योतिष विज्ञान (?) के अध्ययन केन्द्र खुल रहे हैं तथा मिथकों को यथार्थ बनाने की कोशिश की जा रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य में गहराई से प्रवेश कर चुके भय एवं असुरक्षा के अवयवों का लाभ ज्ञान का व्यापार करने वाली ताकतें उठा रही हैं। यदि यह काम सरकार अकेले करती तो अनेक सवाल उठाए जा सकते थे अतः सार्वजनिक-निजी गठजोड़ का सहारा लिया जा रहा है। दर्शन, मानविकी, समाजविज्ञान, देशज भाषा, कला इस गठजोड़ का शिकार बन गए हैं क्योंकि ये विषय नव्य उदारवादी बाजार की शक्तियों की रुचि के हिस्से नहीं हैं। निजी विद्यालयों में इन विषयों को प्रतिष्ठा नहीं दी जाती। सरकारी विद्यालयों में इन विषयों को महत्त्व नहीं दिया जाता। सार्वजनिक-निजी सहयोग भी इस विचार का हामी है। कारण साफ है। शिक्षा रूपान्तरण का हथियार नहीं बननी चाहिए। इसे बाजार के अधीन ही संचालित करना है। आखिर राज्य को भी तो बाजार के अधीन काम करना है। यही दर्शन पनपाया जा रहा है। ताकि 'सामूहिक' खत्म हो और 'अलगावित व्यक्ति' पनपे। 'दर्शन का अन्त' बाजार एवं राज्य दोनों के लिए जरूरी है क्योंकि दोनों किसी 'विकल्प' को पनपाने के लिए इच्छुक नहीं हैं। 'विकल्प' का पनपना उनके 'वर्चस्व' को आखिर चुनौती देता है। द्वितीय 'मिलेनियम डवलपमेण्ट गोल' में 2015 ई. तक पूर्ण प्रारम्भिक शिक्षा का वादा इस विकल्प को पनपा सकता है पर इस हेतु प्रत्येक राज्य को सार्वजनिक-निजी साझेदारी से नाता तोड़कर शिक्षा स्वास्थ्य एवं सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर अपना लोकातांत्रिक नियंत्रण बनाए रखने की आवश्यकता है। ♦

कविता



आने वाला खतरा

इस लज्जित और पराजित युग में
कहीं से ले आओ वह दिमाग
जो खुशामद आदतन नहीं करता

कहीं से ले आओ निर्धनता
जो अपने बदले में कुछ नहीं मांगती
और उसे एक बार आंख से आंख मिलाने दो

जल्दी कर डालो कि फलने फूलने वाले हैं लोग
औरतें पियेंगी आदमी खायेंगे - रमेश
एक दिन इसी तरह आयेगा - रमेश
कि किसी की कोई राय न रह जायेगी - रमेश
क्रोध होगा पर विरोध न होगा
अर्जियों के सिवाय - रमेश
खतरा होगा खतरे की घंटी होगी
और उसे बादशाह बजायेगा - रमेश

रघुवीर सहाय

(‘हंसो हंसो जल्दी हंसो’ संग्रह से साभार)